Shodh International: A Multidisciplinary International Journal (In Hindi)
Vol. 5, Issue 2 – 2020
ISSN: 2581-3501

बदलता समय बदलता आधार-जीवन के रंग मध्यमवर्ग के संग

राजेश कुमार सिन्हा[1]

[1]*शोध-छात्र (इतिहास), शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय उज्जैन (म0प्र0)*

शोध संक्षेप

बदलाव की प्रक्रिया मानवीय जीवन का आधारभूत तत्व है। मानव की संरचना इस बात का साक्षी है कि उसके भौतिक और मानसिक परिवेश में नित नए परिवर्तन होते रहें है जो प्राकृतिक नियम के आधार है। इस परिवर्तन के साथ उसका आधार और मानवीय संवेदना परिपक्व होती है। समय-समय के साथ उसका स्वरूप बदलता रहता है । काल विशेष के साथ मानव व्यवहार ,मानव मूल्य और मानव का जीवन के प्रति अभिप्राय और समाज के प्रति दृष्टिकोण की परिभाषा अलग-अलग काल खंडों में परिवर्तित होती रही है। इसका एक कारण मानव का असंतुष्ट होना भी हो सकता है। अपनी संतुष्टि को प्राप्त करने के उद्देश्य से वह सतत् प्रयासरत रहता है परिणामस्वरूप परिवर्तन लाता है। प्रो. ग्रीन का मानना है कि-''समाजिक परिवर्तन इसलिए होता है क्योंकि प्रत्येक समाज असंतुलन के नए दौड से गुजर रहा है कुछ व्यक्ति एक सम्पूर्ण संतुलन की इच्छा रख सकते है तथा कुछ इसके लिए प्रयास भी करते है।''[1] प्रकृति गत्यात्मक है और इस सृष्टि का प्रत्येक वस्तु बदलती प्रक्रिया से होकर गुजर रही है। लेकिन यह याद रखना मनुष्य का कर्तव्य है कि स्वयं के हितों के लिए समाजिक मर्यादा को दाँव पर न लगने दे। ऐसा करने से स्वयं का उत्कर्ष तो होता है परंतु समाज का अपकर्ष हो जाता है

प्रस्तावना

परिवर्तन को समय के सापेक्ष में देखा जाता है। समय के परिप्रेक्ष्य में विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन आया है। मनुष्य का आधार मानसिक और भौतिक दोनों रूपों में बदला है। जिसे

© Eureka Journals 2020. All Rights Reserved.

विकास के रूप में या आधुनिकता के नाम से उद्‌बोधित किया जाता है। मनुष्य समुदाय से बंधा समाजिक प्राणी है। समुदाय की आवश्यकता, उसकी इच्छा और उसकी आकांक्षा सदैव से उसे उच्च से उच्चत्तर प्राप्ती की ओर अग्रसर करती रहती है यह परिवर्तन साकारात्मक और नाकारात्मक दोनो स्थितियों में हो सकता है जो उसे समाजिक आधारित संरचना को बदलने के लिए उत्प्रेरक का कार्य करता है और मनुष्य बदलने को बाध्य होता है। यह बदलाव समाजिक संरचना, समाजिक संबंध और मानवव्यवहार को परिवर्तित करता है। इस संबंध में मैकाइवर और पेज कहते है-"समाजशास्त्री होने के नाते हमारी विशेष रूचि प्रत्यक्ष रूप से समाजिक संबंधों में है। केवल इन समाजिक संबंधों में होने वाले परिवर्तन को ही हम समाजिक परिवर्तन कहते है।"[2] मानव व्यवहार में आया परिवर्तन परिवार, समाज और राष्ट्र के व्यवहार को परिवर्तित कर देता है। ज्यों ज्यों मानव की आवश्यकता बढती है और संसाधन सीमित होतें है मनुष्य स्वार्थी होने लगता है, अक्रामकता को वरण करने लगता है उसकी यह प्रवृति उसके स्वभाव का हिस्सा बनने लगती है। वह भावनात्मक रूप से कमजोर होने लगता है। वह झूठ का सहारा लेने लगता है। उसका व्यवहारगत परिवर्तन एक नई श्रृखंला को पैदा करता है जो पीढ़ी दर पीढ़ी ऐतिहासिकता को चुनौति देती हुई प्रतीत होती है। समाजिक संस्कार और संस्कृति के आधार में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। एक नया बदला हुआ समाज उभरकर आता है।

विषय वस्तु

बच्चों ने तो कभी जाना ही नही पेड़ों पर चढकर छिपना, किसी दिवार पर चढ़ना, उस पर चलकर बैलेंस बनाना। कितना मनमोहक है गाँव भी इतने मदमस्त और प्राकृतिक रहे होंगें यहाँ की शैली। ये उन्होनें कभी देखा नहीं। प्रत्येक परिस्थिति अधिक से अधिक खुशियाँ के अवसर उपलब्ध करवाती है। प्रश्न यह है कि समाजिक परिवेश इन्हें किस प्रकार स्वीकार करता है।

आज जब ये अपने मित्रों के साथ खेलते है- इनमें प्रतियोगिता की भावना ज्यादा मित्रों के साथ प्रतिभागिता की भावना कम होती है। एक दंभ की भावना ज्यादा उद्‌वेलित होती है। यह छोटी छोटी भावनाएं अब बढ़ती जा रहीं है। क्योंकि समाजिक परवरिश का आधार बदल गया है। भावनाओं की जगह प्रदर्शन को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। उनमें विकसित होना ज्यादा जरूरी है की प्रवृति काम कर रही है।

© Eureka Journals 2020. All Rights Reserved.

भावनाएं भी विकास के सिद्धांत के अनूसार बदलती रहती है। इस विकास में समाजिक पर्यावरण का बहुत बड़ा सहयोग होता है। चार्ल्स डार्विन ने अपनी पुस्तक "द एक्सप्रैशन ऑफ इमोशन्स इन मैन एंड एनिमल्स"[3] में बताया है भावनाएं प्रकृतिक चयन के माध्यम से विकसित हुई है इनके संकर सांस्कृतिक सार्वभौमिक समकक्ष है। मनुष्य स्थिति के मानदंडों के अनुसार अपनी भावनाओं को विकसित करता है। कार्ल लैंग (1834-1900) जो एक डैनीश चिकित्सक और मनोवैज्ञानिक थे ने भी भावनाओं को प्रकृति के मूल परिकल्पना पर आधारित बताते हुए 'जेम्स-लैंग सिद्धात' का विकास किया था। उनके अनुसार भावनात्मक प्रतिक्रियाओं वातावरण में संभावित भावनात्मक धटनाओं के लिए हमारी शारीरिक प्रतिक्रियाओं से मिलकर बनता है।

समाज में संरचनात्मक एवं सांस्कृतिक भिन्नताएं पाई जाती है इसका स्वरूप, प्रकृति एवं प्रभाविता भिन्न-भिन्न होती है। जो समाज जितना गत्यात्मक होता है उसमें उतनी अधिक भावनात्मक भिन्नता दिखाई देती है और यह समाजिक असंतुलन पैदा करती है। वर्तमान मध्यमवर्गीय समाज इस प्रक्रीया से संर्धषरत है। प्रखर समाजशास्त्री शकुंतला नांदल का मानना है कि समाजिक सरोकार में तेजी से बिखराव आया है। समाजिक संबंधों में गहराई का अभाव दिखता है। उनकी मानसिक चेतना परिवारिक आवश्यकताओं को कम और व्यक्तिगत आवश्यकताओं को अधिक महत्व देने का प्रवृति को विकसित किया है।

टूटते घर, अकेलापन, अंतरंग संबंध मे बिखराव, मानसिक अकेलापन, पद की असीम लालसा, और आर्थिक दबाव के कारण मध्यमवर्ग विशेष रूप से बिखर सा गया है । इन्हें समाज से भावनात्मक सहारे की जरूरत है लेकिन विकास की आसीम प्रतिस्पर्धा में तो समाज कहीं खो गया है। मनुष्य यथार्थ, सच, और वास्तविकता जैसी चीजों को महत्वहीन सा कर दिया है मानो यह अर्थहीन है। ''जीवन का यथार्थ मनुष्य के समस्त भौतिक और आवेगात्मक संधर्ष और सामंजस्य, मानवीय सम्बधों की व्यापकता ,जटिलता और सुकुमारता तथा समाजिक परिवेश और उसके अस्तित्व के कुल द्वन्द्वात्मक सम्बध का पर्याय है।"[4] लेकिन बदलता समाज इन चीजों से मुंह मोडें हुए है। एक ऐसा भी दौड़ था जब परिस्थितियों को मनुष्य नियंत्रित करता था। आज विकास के सर्वोत्तम दौड़ में परिस्थितियों से मनुष्य नियंत्रित है। कारण है इसका, अवसरों का बाहुल्य, सामाजिक विविधता, निर्णय पर पारिवारिक और समाजिक नियंत्रणों की कमी मनुष्य के स्वहित को और बढा देती है और वह अपने निर्णय

© Eureka Journals 2020. All Rights Reserved.

स्वंय लेकर अपने कैरियर (व्यवसाय) और कार्यवाही का चयन कर लेता है और समाज से दूर हो जाता है क्योंकि अनुभव मौन है। पश्चिमी ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था ने उन्हें समाजिक आदर्शो के उपर वैयक्तिक आदर्शो को ज्यादा महत्वपूर्ण मानने पर विवश कर दिया है।

शिक्षा समाज और राष्ट्र के लिए कच्चे माल की तरह होता है जिसका प्रयोग उपयोगिता के किसी भी साधन के निर्माण में किया जा सकता है। भारत के शिक्षाविद् इस क्षेत्र में कार्य कर रहें है वे इंजीनियर, डॉक्टर, व्यवसायी और सफल राजनेता तो बनाने में सक्षम होतें है। पर जरा सोचिए वे ईमानदार इंजीनियर, दयालु डॉक्टर, समाजसेवी व्यवसायी और देश के प्रति समर्पित राजनेता की आदर्शवादिता का जज्बा छात्रों में क्यों नहीं भर पाते हैं। क्या अब वे सिर्फ परीक्षा में अच्छे अंक दिलाने के लिए पढ़ाते है या फिर अपना पगार पाने से मतलब रखतें है। प्रकृतवादियों की तरह बालक को स्वंय ही अध्ययन के लिए प्रोतसाहित क्यों नहीं करते। आदर्शवादी शिक्षा पद्धति के अनूसार अपने व्यक्तित्व की सम्पूर्ण छाप बच्चों के उपर क्यों नहीं डाल पाते। वे प्रयोजनवादी समाजिक विधि को ज्यादा महत्व देते है और रटने की विधि पर केन्द्रित शिक्षण विधि उनके केन्द्र में क्यों होता है। वर्तमान व्यवस्था शिक्षाविदों को वह अधिकार नहीं देती जो पूर्व में शिक्षा के क्षेत्र में प्राचीन मनीषियों को प्राप्त था वर्तमान काल में शिक्षक उन पाठ्यक्रम को पढ़ाने के लिए बाध्य है जो व्यवस्था उन्हें उपलब्ध करवाती है। शिक्षा को दायरे बाँधा नहीं जा सकता आइंस्टीन का मानना था कि- अपनी समस्याओं काउन विचारों के साथ नहीं सुलझा सकते जिनसे वे उपजे हों''

यही कारण है कि 100 प्रतिशत अंक लाने वालों की भरमार बढ़ती जा रही है पर न तो आर्यभट्ट, न वराहमिहिर, न नागार्जुन, न सुश्रुत और न ही चरक जैसा वैज्ञानिक समाज को मिल पा रहें है। मिल रहा है तो करोडों के पैकेज वाला प्रशासक, प्रबंधक और जोड़ तोड़ करने वाला राजनेता समाज को गांधी, सुभाष, और तिलक नहीं मिल पा रहा इसे प्रगति या बदलाव का नाम दिया जा सकता है पर यह प्रगति आत्मकेदिंरत विकास है जिसका फायदा समाज को नहीं मिलता बल्कि हम एक अंधी प्रतियोगिता को बढ़ावा देतें है जिसका कोई अंत ही नहीं है। वर्तमान में इस प्रतियोगिता में मध्यमवर्ग सबसे आगे है।

भारत में मध्यमवर्ग के चरित्र पर विशेष रूप से आजादी के बाद इस तरह के आरोप लगाए गए है। आजादी के बाद भारत का मध्यमवर्ग वह था जिसने अपने हितों के लिए ''राष्ट्रीय ऐजेंडे का अपहरण कर लिया''[5] वर्तमान में शिक्षा एक व्यवसाय का रूप धारण कर चुका है।

© Eureka Journals 2020. All Rights Reserved.

परिणामस्वरूप प्रत्येक कृत्य को लाभ-हानि से तैलकर देखा जाता है। वर्तमान शिक्षा ने एक ऐसा तंत्र पैदा कर दिया है ''जहाँ चोरी करना गुनाह नहीं ..... चोरी करनेवालों को देखने पर सजा भुगतना पड़ता है।''[6] यह समाजिक समस्या है या फैशन जिसके दौड़ में बने रहना आज की आर्थिक बाध्यता है। संचार तंत्र के इस प्रगतिशील समाज में आधुनिक गैजेट पर अधिक से अधिक वायरल होना ही सफलता का पैमाना है जहाँ अतरंग वस्त्रों और संबंधों की नुमाइश से भी परहेज नहीं फिर बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना के पश्चिमीकरण का ढोंग क्यों किया जाता है।

मानव का समाजिक परिवेश चेतना के विकास के लिए अन्नत अवसर प्रदान करता है। मार्क्स के अनुसार, ''मानव चेतना उसके अस्तित्व का निर्धारण नहीं करती बल्कि उसका समाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना का निर्धारण करता है।''[7] लेकिन आज मार्क्स की यह परिभाषा अप्रसांगिक प्रतीत होती है। समाज चेतना शून्य हो गया है। सब कुछ है परंतु संतोष नहीं, सारे साधन उपलब्ध है परंतु आराम नहीं, सुकून नहीं। तकनीकि तौर पर मेडिकल सुविधा उन्नत है पर हर कोई यहाँ बीमार है। समाजिक मर्यादा इतनी तार-तार हो गई है कि समाज को वही दिखाया जाता है जो वे दिखाना चाहते है। वही सुनाया जाता है जो वे कहना चाहते है क्योकि इसके पीछे आर्थिक और राजनीतिक प्रलोभन क्रियाशील होता है। जीवन बदल रहा है, आधुनिक हो रहा है हर तरफ प्रगति दिख रही है पर इंसान पिछड़ता जा रहा है।

जीवन में परिवर्तन है, संधर्ष है, जो परस्पर समान उद्देश्यों और कार्यो की आवश्यकताओं के अनुसार गतिमान होता है। यह व्यवस्थित रूप से चल सके इसलिए मनुष्य को समाज की आवश्यकता पड़ती है। लेकिन संविधान में प्रदत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के नाम पर यह गौण सा हो गया है। कुले का मानना है कि- ''समाज रीतियों या प्रक्रियाओं का जटील ढ़ांचा है जिसमें प्रत्येक जीवित है और एक दुसरे के प्रभाव के कारण आगे बढ़ती रहती है एवं पूर्ण अस्तित्व में इस प्रकार की एकता पायी जाती है कि जो कुछ एक भाग में होता है वह शेष पर पड़ता है।''[8] अधिशेष प्रभाव की चिंता स्वार्थ की बलि बेदी पर प्रतिदिन स्वाहा होती है जिसे देख कर अनदेखा कर दिया जाता है।

अति उत्साह में, आत्म दंभ में, कुछ नया करने और अपना प्रभाव दिखाने के क्रम में ऐसा कुछ कर गुजरते है जो गलत फैशन के रूप समाज में प्रचलन में आ जाता है। कुछ समय

© Eureka Journals 2020. All Rights Reserved.

पश्चात धटनाओं को संस्कार हीनता कें नाम पर कोसते है। इस विषय पर मूवी बनती है और पॉपकॉर्न के साथ देखी भी जाती है। यह साहित्य का विषय बनता है। टी. वी. चैनल का टेवल टॉक बनता है गरमा-गरम बहस होती है और अत्यधिक प्रचारित किया जाता है। परिणाम क्या है अगले दिन फिर वही रूटीन लाइफ। सब कुछ भूला दिया जाता है। वर्तमान युग का यही चलन हो चुका है। यह शहरीकरण का परिणाम है, पश्चिमी करण है या फिर मानसिक चेतना का पतन या आधुनिक शिक्षा का परिणाम।

निष्कर्ष

इस बदलते बातावरण में समाज की वस्तुस्थिति काफी तेजी से बदलती जा रही है परिणामतः मनुष्य भौतिक सुख प्राप्त करने की ओर ज्यादा प्रवृत होता दिख रहा है। परम्परावादी व्यवस्था की ओर से उनका रूझान कम होता जा रहा है जिसका प्रभाव समाजिक संबंधें पर दिखाई दे रहा है संबंधों की प्रगाढ़ता कम होती जा रही है पारिवारिक संबंध भी संकीर्ण होते जा रहे है। हाल के वर्षो में यह समाजिक समस्या के रूप में उभर रहा है। इस संदर्भ में डॉ. एस. पी. श्रीवास्तव का कथन है-''समाजिक समस्या मानवीय संबंधों की वह समस्या है जो समाज के लिए गम्भीर रूप से हानिकारक सिद्ध होती है और जिसके कारण बहुत से लोगों की महत्वपूर्ण इच्छाएं पूरी नहीं हो पाती है।''[9] 102 नॉट आउट मूवी, बागवान और अन्य कई मूवी ने इस समाजिक प्रश्न की ओर ध्यान आकृष्ट कराया है पर यह असंतोष का कारण ही बना है। ऐसी परिस्थिति में मानसिक परिवर्तन तो आता है और पुरानी परंपराएं मूल्य, नियम एवं व्यवहार की सार्थकता अच्छे लगते है। लेकिन बोधगाम्य परिवर्तन की हिम्मत नहीं जुटा पाते।

सार्थक परिणाम आधुनिकृत परिणाम के आगे पराजित हो जाता है। मानविय मूल्य, त्याग, सेवा संयम आदि सांस्कृतिक आधारभूत तत्व भौतिकता के आगे नतमस्तक नजर आते है। आज प्रसिद्धि के पीछे अपना परिवार और समाज छूटता जा रहा है माता-पिता को भी भूल जाते है। भारतीय मध्यमवर्गीय समाज इन्हीं विभिन्न कारणें से रूपांतरित होता जा रहा है। आर्थिक प्रगति, जनसंचार की व्यापकता, शहरीकरण, शिक्षा के प्रसार और अधिक से अधिक संपदा की होड़ ने भारतीय समाज के परंपरागत स्वरूप को बदल दिया है। वर्तमान आधुनिक समाज के सामने यह यक्ष प्रश्न है जिसका उत्तर समाज को ही देना है। मानवता और

© Eureka Journals 2020. All Rights Reserved.

आधुनिकता के द्वंद में सोई हुई अन्तरआत्मा को जगाना पडेगा समसामयिक संदर्भो से जुड़ी इस मानसिक दरिद्रता को सबसे पहले स्वीकारना होगा तभी इसके प्रति समाजिक निर्णय लिए जा सकेंगें। ‘‘जो यहाँ नहीं है वह कहीं नहीं है, लेकिन जो कहीं नहीं है, वह भी यहीं है। पूँजीपति वर्ग जहाँ पर भी उसका पलड़ा भारी हुआ, वहाँ सभी सामंती, पितृत्तात्मक और काव्यात्मक सुबंधों का अंत कर दिया। उसने मनुष्य को अपने स्वाभाविक बडों के साथ बाँध रखने वाले नाना प्रकार के सामंती संबंधें को निर्ममता से तोड डाला, और नग्न स्वार्थ के नकद पैसे-कोडी के हृदय-शून्य व्यवहार के सिवा मनुष्यों के बीच कोई दूसरा संबंध बाकी नहीं रहने दिया।’’[10] बदलते समय के साथ जीवन में समायोजन की प्रक्रिया को भी ध्यान में रखने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. मार्क्स, कार्ल, (सन1904), ए कन्ट्रीब्यूशन्स टू दी क्रिटीक ऑफ पोलिटिकल इकोनोमी: ट्रान्सलेटेड एन. आई. स्टोन, शिकागो, चार्ल्सएस. केर।
2. पारसन्स, टालकाट (सन् 1957 ई.), सोशल सिस्टम।
3. डार्विन चार्ल्स (1872) द एक्सप्रैशन ऑफ इमोशन्स इन मैन एंड एनिमल्स।
4. सत्यकाम, आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचंद,पृ.स. 48.
5. वर्मा, पवन कुमार, भारत के मध्यमवर्ग की अजीब दास्तान, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1999, पृ.सं.
6. शुक्ल श्रीलाल, पहला पड़ाव, पृ. सं. 242.
7. प्रसाद, महादेव, उद्धृत, महात्मा गांधी का समाज, दर्शन, पृ. 83.
8. Cooley, C.H, The Social Progress.
9. श्रीवास्तव, एस.पी.,भारतीय समाजिक समस्याएं, पृ.3.
10. मार्क्स, कार्ल और फ्रेडरिक एंगेल्स, कला और समाज (पहल-10-11, मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र अंक), पृ. 6 पर उद्धृत।
11. जोशी, पूरन चंद्र, स्वप्न और यथार्थ आजादी की आधी सदी, राजकमल प्रकाशन, पटना।

© Eureka Journals 2020. All Rights Reserved.